आदिवासी कविता में व्यक्त प्रकृति चिंतन

डॉ. आरिफ शौकत महात
हिंदी विभाग प्रमुख,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
मो. 9860857089
ई. मेल- drmahatas@gmail.com

शोध सार:

वास्तव में आदिवासी समुदाय का समूचा जीवन ही जल, जंगल, जमीन से जुड़ा हुआ है। वह अपने जीवन को जल, जंगल, जमीन से परे सोच ही नहीं सकते। इसीलिए विकास के नाम पर जब विस्थापन की बात आती है। जंगल के विनाश की बात आती है। तो यह हर तरह से उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। जल, जंगल, जमीन इनके सिर्फ सहचर ही नहीं बल्कि इनकी अस्मिता, सहजीवन एवं सहअस्तित्व की पहचान बन चुके हैं। इसीलिए आदिवासी रचनाकार वंदना टेटे आदिवासी को 'धरती के केअर टेकर' कहती हैं।

बीज शब्द: प्रकृति, आदिवासी, पर्यावरण, जल, जंगल, जमीन।

मनुष्य की असीम आकांक्षाओं ने सृष्टि का संतुलन डावाडोल कर दिया है। वर्तमान समय में मनुष्य विकास की जिस पथ पर अग्रेसित हुआ है उसकी सबसे ज्यादा कीमत प्रकृति चूका रही है। सृष्टि में हर चीज के बर्दाश्त की एक हद होती है। वैसे ही प्रकृति की भी अपनी एक हद है। मनुष्य के विकास के शुरुआती दौर में प्रकृति ने मनुष्य के द्वारा किया गया दोहन बर्दाश्त कर लिया लेकिन मनुष्य की अमर्याद इच्छाओं के आगे प्रकृति ने भी हाथ खड़े कर दिए। हर क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है। वर्तमान समय में मनुष्य के द्वारा प्रकृति के दोहन के हर क्रिया का जवाब प्रकृति प्रतिक्रिया के रूप में दे रही है। वर्तमान समय में व्याप्त प्राकृतिक आपदा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण दो स्तरों पर ज्यादातर क्रियाशील दिखाई देता है। एक सरकारी प्रयास एवं सामाजिक संस्थानों के द्वारा किए जाने वाले कार्य के रूप में और दूसरा आदिवासियों के संघर्ष में, जिनके लिए प्रकृति ही सब कुछ है। आदिवासी समुदाय को उनके जल, जंगल और जमीन से परे सोचा ही नहीं जा सकता। यह समुदाय सदियों से प्रकृति का रक्षक रहा है पर्यावरण संरक्षण, जलवायु की नियमितता, संधारणीय विकास आदि पर्यावरण से जुड़े सभी चीजों में आदिवासी का मुख्य योगदान रहा है। यह समुदाय प्रकृति की और उस में पलने वाले को अपने परिवार का सदस्य मानता है। विकास के इस दौर में इन दोनों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा। आदिवासी साहित्य में प्रकृति के दोहन का चित्रण चिंतन के धरातल पर पहुँचता है।

आदिवासी प्रकृति के संवर्धन के लिए कुछ भी कर सकता है। इसकी एक झलक हमें महादेव टोप्पो की कविता 'जंगल का कवि' में देखने मिलती है। कवि के अनुसार जब जब जंगल पर खतरा मंडराएगा जंगल की मूलनिवासी आदिवासी इसके लिए खड़े होंगे-

"इस जंगल का कवि
रहेगा भला कैसे चुप ?
वह धनुष उठाएगा
प्रत्यंचा पर कलम चढ़ाएगा
साथ में बांसुरी और मांदर भी
जरूर उठाएगा
जंगल के हरेपन को
बचाने की खातिर
जंगल का कवि
मांदर बजाएगा
बांसुरी बजाएगा
चढ़ा कर प्रत्यंचा पर कलम।" [1]

वास्तव में जंगल की हानि के कोई भी कारण क्यों न रहे जंगलवासी उसकी सुरक्षा हेतु हर संभव कदम उठाएँगें। फिर चाहे उसके लिए उन्हें किसी भी हद तक क्यों न जाना पड़े। वास्तव में आदिवासी समुदाय का समूचा जीवन ही जल, जंगल, जमीन से जुड़ा

हुआ है। वह अपने जीवन को जल, जंगल, जमीन से परे सोच ही नहीं सकते। इसीलिए विकास के नाम पर जब विस्थापन की बात आती है। जंगल के विनाश की बात आती है। तो यह हर तरह से उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। जल, जंगल, जमीन इनके सिर्फ सहचर ही नहीं बल्कि इनकी अस्मिता, सहजीवन एवं सहअस्तित्व की पहचान बन चुके हैं। इसीलिए आदिवासी रचनाकार वंदना टेटे आदिवासी को 'धरती के केअर टेकर' कहती हैं।

आदिवासी समुदाय के सारे क्रियाकलाप प्रकृति से जुड़े हुए हैं। अपने जीवन से जुड़े हर भावना को वह प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है। आदिवासी कविता के प्रत्येक स्वर में हमें प्रकृति प्रेम दिखाई देता है। पेड़, पौधे, नदी, झरना, पर्वत, सूरज, चाँद आदि सब इनकी कविता में पूरी जीवंतता के साथ आते हैं। रामदयाल मुंडा की कविता इसका उत्कृष्ठ नमूना हैं। प्रेम के इजहार में प्रेमी मन की भावना का प्रकृति के द्वारा उद्घघाटन 'अगर तुम पेड़ होते' में देखने मिलता है-

"अगर तुम पेड़ होते और मैं पंछी
तुम्हारे पेड़ पर ही मैं डेरा डालता
अगर तुम झाड़ी होते और मैं तीतर
तुम्हारी झाड़ी में ही मैं वास करता।"[2]

तो वही कवि अपनी भूख की पीड़ा को व्यक्त करने में भी प्रकृति का ही सहारा लेता है।

"कई रात खाली पेट सोने के बाद
सुबह
भूखे जगने वालों से पूछिए
सूरज देवता नहीं
एक रोटी सा लगता है।"[3]

विकास के नाम पर सबसे ज्यादा लूट अगर किसी की हुई है तो वह आदिवासी और पर्यावरण की। इसलिए आदिवासी जब भी अपने अधिकार की मांग करता है या अपने अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए संघर्ष करता है तो वह संघर्ष सिर्फ उसका न रहते हुए प्रकृति एवं पर्यावरण को बचाए रखने का संघर्ष बन जाता है। अपनी इसी भावनाओं को अनुज लुगुन 'ससान दिरी' कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"ये सरकारी चेहरे की तरह पत्थर नहीं हैं
इनमें जंगल के लिए लड़ते हुए
एक पेड़ की कहानी है
जो धराशायी हो गया
नफ़रत की कुल्हाड़ी से
एक डाल की कहानी है
जो पंछियों को पनाह देते-देते टूट गयी
एक फूल की कहानी है
जो बसन्त के आने से पहले झुलस गया"[4]

वास्तविक रूप में ससन दिरी मुंडा आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत वाला पत्थर है। यह पत्थर आदिवासियों के पुरखों के सम्मान हेतु उनके कब्र पर गाडा जाता है। धरती को बचाए रखने की इनकी लालसा मरने के बाद भी खत्म नहीं होती। यह लालसा ससान दिरी के रूप में संघर्ष में बराबर लगी रहती है। इसीलिए जब कभी आदिवासीयों को संघर्ष करने की नौबत आती है वह संघर्ष के रास्ते पर अपना आखरी गीत अपने धरती के लिए गाने की मनशा रखता है।

ग्रेस कुजूर अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों की समस्या के साथ-साथ स्त्री समस्याओं को भी व्यक्त करती हैं। कविता में स्त्री की समस्याओं को व्यक्त करते हुए वह प्रकृति के सहारे ही अपनी बात रखती हैं।

"लेकिन तुम्हें
उसका बरगद होना अच्छा नहीं लगता
तुम -
कैद कर देते हो उसे गमले में किसी बोनसाई की
मानिंद"[5]

आदिवासी समुदाय में बलात्कार, दगाबाजी, बिन ब्याही माँ आदि स्त्री जीवन से संबंधित समस्या न के बराबर है। लेकिन विकास के इस दौर में जब से आदिवासियों का मुख्य धारा के लोगों से संबंध स्थापित हुआ है यह समस्या उनके यहाँ पनपती जा रही है। इसी समस्या में से बिन ब्याही माँ की त्रासदी का चित्रण रामदयाल मुंडा जी अपनी 'इन्कार' कविता में करते हैं-

"पहाड़ ने कहा-
मैं इतना ऊँचा
कैसे कर सकता हूँ
ऐसी खोटी करनी ?
सागर ने कहा-
मैंने इसे कभी देखा भी नहीं
कैसे हो सकती है यह !
मेरी पत्नी ?
और नदी कुमारी रो रही थी
गोद में लेकर पानी।"[6]

यहाँ एक बात विशेष ध्यान में रखने की है कि आदिवासी जब भी किसी समस्या को व्यक्त करते हैं फिर चाहे वो प्रेम की सुमधुर व्याख्या हो, या विस्थापन, भुखमरी, स्त्री शोषण, बेरोजगारी की समस्या हो तो वह हर समस्या की वास्तविकता का बखान करते समय प्रकृति को प्रतीक के रूप में सटीक तौर पर इस्तेमाल करते हैं। उनके जीवन की हर बात प्रकृति से शुरू होकर प्रकृति पर ही खत्म हो जाती है।

विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन एवं अवैध खनन आदि कारणों से पर्यावरण में परिवर्तन आया है। पर्यावरण प्रदूषण आज वैश्विक समस्या बन गई है। मृदा, जल, वायु, ध्वनि आदि हर स्तर पर प्रदुषण बढ़ता जा रहा है। परिणाम स्वरूप प्रकृति एवं जीव-जंतुओं का जीवन खतरे में है। आदिवासी कविता में पर्यावरण के होते बदलाव का मार्मिक चित्रण देखने मिलता है। महादेव टोप्पो जी की कविता 'पेरवा घाघ के कबूतर' में प्राकृतिक जगहों पर विकास की अंधी दौड़ से पर्यावरण में होते बदलाव से वहाँ के जीवों पर पड़ते प्रभाव का मार्मिक चित्रण पेरवा घाघ स्थान के कबूतर के माध्यम से किया गया है। ओली मिंज के 'इदरी का जंगल' कविता में जंगल की कुटाई का चित्रण देखने मिलता है। इन सारी बातों से आहत आदिवासी कवि यह चेतावनी देने से नहीं रुकता की प्रकृति का दोहन ऐसे ही चलता रहा तो आने वाले दौर में हम नई पीढ़ियों को प्रकृति की यह सारी बातें तस्वीरों में ही दिखाने के लिए मजबूर हो जायेंगें। प्रकृति के होते इसी हनन पर चिंता व्यक्त करते हुए ओली मिंज कहते हैं-

"पेड़-पौधों को रौंदकर
जंगली जानवरों की खाल पर
पक्षियों के पंखों को टाँककर
निःसंदेह आदमी
संपूर्ण मानव समुदाय के लिए
एक खूबसूरत कफन बना रहा है।"[7]

सभ्य कहे जाने वाले समाज का प्रकृति पर अत्याचार हद से ज्यादा बढ़ता है तो हर आदिवासी तिलमिला उठता है और जब वह देखता है उनसे उनके घर-द्वार, खेत-खलिहान, भाषा-संस्कृति, अध्यात्म, जंगल, पहाड़, नदी-झरने, पेड़-पत्ते सब कुछ छीन लेने के बाद सारी प्राकृतिक संसाधनों को गंदे नाले में बदल कर उसे ततकथित लोग उसे बचाने का दिखावा करते हैं तो उनकी इस हरकत पर सबसे ज्यादा गुस्सा आदिवासी को ही आता है।

पर्यावरण के साथ विकास के नाम पर निरंतर इस तरह से अत्याचार होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जहाँ प्रकृति अपने विध्वंस स्वरूप में सामने आकर हमसे हमारे करतूतों का बदला लेगी। हम बूंद बूंद पानी के लिए तरस जाएँगे और ऐसा नहीं कि यह हो नहीं रहा बस हम इन चीजों की तरफ नजरअंदाज कर रहे हैं इसीलिए समय के पहरेदारों को कवित्री आवाहन कहती हैं-

"एक बूँद पानी के लिए
तड़प-तड़प जायेंगी
हमारी पीढ़ियाँ
इसलिए
मैं सच कहती हूँ

हे समय के पहरेदारो !
तुमने अवश्य सुना होगा
एक वृक्ष की जगह
लगाओ दूसरा वृक्ष
क्या कभी सुना है
एक पर्वत के बदले
उगाओ दूसरा पर्वत ?"[8]

अतः वर्तमान समय को ध्यान में रखते हुए हमें हमारे पृथ्वी के संरक्षण हेतु और हमारे आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकृति संरक्षण का हर प्रयास करना आवश्यक बन गया है। हमारा यह प्रयास सिर्फ कागजों तक सीमित न रहते हुए उसे जमीनी हकीकत तक लाने की प्रामाणिक कोशिश होनी चाहिए। तभी हम आने वाली पीढ़ी को उज्जवल भविष्य दे पाएँगे। "हे समय के पहरेदारों" कविता में ग्रेस कुजूर का कहना कितना प्रासंगिक है। वह कहती हैं-

"इसीलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ो प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति
एक दिन माँगेगी हमसे
तुमसे अपनी तरुणाई का
एक-एक क्षण और करेगी
भयंकर बगावत और तब
न तुम होगे
न हम होंगे!"[9]

वर्तमान पर्यावरण संकट के इस दौर में यह शब्द सटीक प्रहार करते हैं, लेकिन हम सुनने के लिए कहाँ तैयार हैं? हम सुन कहाँ रहे हैं। हम अनसुना कर रहे हैं। बातों को टाल रहे हैं। हाँ तब तक टालेंगे जब तक कवियित्री की कही बातें पूरी तरह से सच नहीं होगी।

निष्कर्षतः आदिवासी कविता में प्रकृति चित्रण पूरी जीवंतता के साथ उजागर हुआ है। जल, जंगल, जमीन से परे आदिवासियों का जीवन है ही नहीं इसलिए उनके प्रत्येक क्षण एवं कण में प्रकृति का वास नजर आता है। वर्तमान पर्यावरण संकट की इस घडी में जहाँ सारे विश्व पर खतरा मँडरा रहा है। पर्यावरण के बचाव के उपाय एवं उसकी कार्यान्विती कितनी कारगर है यह सब को मालूम है। विकास के इस दौर ने आदिवासियों के साथ प्रकृति को भी संघर्ष के रास्ते पर ला खड़ा किया है। वक्त के रहते हम नहीं समझे तो इसका सबसे बड़ा खामियाजा हमें ही भुगतना पड़ेगा यही बात आदिवासी कविता के माध्यम से उजागर होती है। इसमें कोई दो राय नहीं।

संदर्भ:

1. गुप्ता रमणिका (संपा.)महादेव टोप्पो, 'जंगल का कवि', आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2004, पृष्ठ 47-48
2. गुप्ता रमणिका (संपा.) कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2015, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 39
4. वही, पृष्ठ 59
5. वही, पृष्ठ 91
6. वही, पृष्ठ 35
7. वही, पृष्ठ 162
8. वही, पृष्ठ 106
9. वही, पृष्ठ 107